

भूषण

का

काव्य-वैभव

संग्रहणीय शोध-ग्रन्थ

- १ प्रसाद की दार्शनिक चेतना
डॉ० चक्रवर्ती
मू० २० ००
- २ सत साहित्य
डॉ० प्रमनारायण शुक्ल
मू० १८ ००
- ३ हिंदी कहानी की रचना प्रक्रिया
डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
मू० १२ ५०
- ४ मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य
डॉ० गिबसहाय पाठक
मू० १८ ००
- ५ आधुनिक हिंदी कविता में छानि
डॉ० कृष्णलाल शर्मा
मू० १५ ००
- ६ छायावाद काव्य तथा दर्शन
डॉ० हरनारायण सिंह
मू० १५ ००
- ७ प्रगतिवादी समीक्षा
श्री रामप्रसाद त्रिवेदी
मू० १० ००
- ८ आधुनिक हिंदी-काव्य भाषा
डॉ० रामकुमार सिंह
मू० २५ ००
- ९ हिंदी के स्वच्छंदतावादी उपन्यास
डॉ० कमलकुमारी जीहरी
मू० २० ००
- १० सूरदास का काव्य बर्णन
डॉ० मुशीराम शर्मा
मू० १२ ५०
- ११ काव्य में रहस्यवाद
डॉ० बच्चूलाल अवस्थी
मू० १२ ५०

सूरदास का काव्य-वैभव

डॉ० मु शीराम शर्मा

एम० ए०, पी एच० डी० डी० लिट



ग्रन्थम्,

रामबाग, कानपुर

ग्रन्थम



३.३६

● मूल्य
बारह रुपए पचास पैसे

● प्रकाशक

ग्रन्थम, रामबाग कानपुर

● प्रकाशनकाल

नवम्बर १९६४

● मुद्रक

मानक प्रिण्टर्स आनन्दबाग
कानपुर-१

आमुख

प्रस्तुत ग्रन्थ कविकुल तिलक महात्मा सूरदास की काव्यश्री पर प्रकाश डालने के लिए लिखा गया है। प्रकाशित तो वह ४०० वर्षों से है परन्तु काव्यशास्त्र की दृष्टि से उसका विश्लेषण अभी तक बहुत कम हुआ है। सब प्रथम काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक स्वर्गीय लाला भगवानदीन ने 'सूर पंचरत्न' की भूमिका में सूर के काव्य का आत्मनीय दृष्टि से विश्लेषण किया था। श्री गिखर चन्द्र जन का 'सूर एक अध्ययन' पुस्तक में भी सूर की कला का विवेचन किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'ममरगीत सार' की भूमिका में जो विचार प्रकट किए गए हैं उनमें भी भावपक्ष के साथ काव्यकला की भीमासा उपलब्ध होती है। 'सूर सौरभ' में हमने भी सूरदास के काव्य की विगणनाओं के उपाटन का प्रयत्न किया है। कुछ अन्य ग्रन्थ भी इसपर प्रकाशित हुए हैं जिनमें सूर की काम्यकला का विवेचन प्राप्त होता है।

महात्मा सूरदास से सम्बन्धित हमारे तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—'सूर सौरभ', 'भारतायनामना और सूर साहित्य', तथा 'सूरदास और भगवद्भक्ति'। भक्ति विकास' शीघ्रक ग्रन्थ में भी हमने सूरदास की भक्ति का प्रतिपादन किया है। सूरकाव्य का अध्ययन और अध्यापन करते हुए सूर के काव्य रत्न की कई ऐसी दिशाओं का आभास हुआ जो अभी तक अनुपाटित पड़ी रहीं। इनमें से एक दिशा है सूर के काव्य की वक्राति ध्यनितया ओचित्य सम्प्रदाय की दृष्टि से अध्ययन। मैंने अपने दो निष्पत्ति का इसी दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया है। और वे तन्मन एक हाथर इस कार्य में जुट गये हैं।

'साहित्य सहरो' में सूरदास के जीवन परिचयक पन्ने के रहते हुए भी साधारण नहीं बड़े-बड़े विद्वानों के अदर में संदेह बना हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस पन्ने की प्रामाणिकता स्वीकार की थी और जिसके आधार पर उन्होंने सूर की एक महान कृष्ण से संबद्ध माना था, उस पद का अप्रामा

णिक घोषित करने का प्रबल प्रयत्न होता रहा है और वह केवल इस आधार पर कि बार्ता साहित्य में एक स्थान पर उन्हें सारस्वत लिखा गया है। हम इसका पूर्व भी लिख चुके हैं कि भट्ट और सारस्वत दोनों शब्दों में कोई विरोध नहीं है। काश्मीरी भट्ट तथा महाराष्ट्रीय भट्टों का एक बग आज तक अपन को सारस्वत कहता है। भट्टा को विद्वज्जन सरस्वती पुत्र कहते ही रहे हैं। सरस्वती पुत्र का अर्थ सारस्वत ही है। बाणभट्ट ने भी अपनी उत्पत्ति का बणन करते हुए अपने पूर्वजा का सरस्वती से उद्भूत माना है। सूरदास के पूर्वज महाकवि चन्दबरदायी न भी जहाँ अपन आप को कवि 'भट्ट बरदायी' आदि लिखा है वहाँ सारस्वत भी लिखा है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जिस पृथ्वीराज रासउ का संपादन किया है उसकी भूमिका के पृष्ठ १२५ १२६ १२७ तथा १२८ पर उन्होंने पुरातन प्रबन्ध संग्रह में सुरक्षित 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' का सारांश उपस्थित किया है। इस सारांश में पृष्ठ १२७ पर यह अपने को 'सारस्वत' कहना है— मैं सिद्ध सारस्वत करता हूँ।

साहित्यलहरी में के मुनि पुनि रसन के लेख' टेक वाले पद में सूर ने जिस सबत का निर्देश किया है उसे हमने सावत्सरिक गणना के आधार पर १६२७ विजयी माना था। 'सुवल' शब्द से हमने सप्तम सवत्सर का अर्थ लेकर जो स० १६२७ में पड़ता है ऐसा लिखा था। इधर जो खोज हुई है उससे इसी सबत की सत्यता सिद्ध हो रही है।

सूरदास का काव्य ब्रम्ह नाम से अब हमारा यह चतुर्थ ग्रन्थ सूर साहित्यानुरागियों के समक्ष उपस्थित हो रहा है। इसका कुछ अंश पूर्व ग्रन्थों में भी आ चुका है। विष्णुपन सूर की काव्य संपदा पर ही इसमें विचार किया गया है। काव्य के भाव तथा कला दो पक्ष सब स्वीकृत हैं। श्रोत्र के अनुसार दोनों एक दूसरे में ऐसे अनुस्यूत हैं कि उनका पृथक्करण कुछ ही एक कष्ट साध्य सा प्रतीत होता है। सवश्रष्ट अनुभूति अपनी अभिव्यक्ति के अत्यन्त शान्ति में सवश्रष्ट शब्दों में ही प्रकट होती है। हमारे यहाँ कवि को इसीलिए 'प्रजापति' की सत्ता प्राप्त है फिर भी आलोचकों ने दोनों के पाथक्य का प्रयत्न किया ही है। भाव जहाँ हृदय प्रसूत हैं वहाँ कला मुद्रि जाय है। इसी हेतु उस वदम्भ भगी भणिति कहा गया है। विदग्धता मुद्रि की उपज है। उसमें जिस मंगिमा के दर्शन होते हैं। उसे चित्तन तथा मनन का परिणाम कहा जा सकता है, पर उस प्रणाम दोनों मिलकर एक हो जाते हैं वसे ही सवश्रष्ट काव्य के लिये श्रोत्र ने उनकी एकता का प्रतिपादन किया है।

सूरदास का भाव भहार अपार है उसी प्रकार उनकी कला भी, अनिव्यक्ति कीशल भी गहन एवम विशाल है। किसी आलाचक न सूरदास की महिमा को लक्ष्य करके कहा है—

उत्तम पद कवि गग के उपमा का बलबोर ।

बेगुन अथ गभीरता सूर तीन गुण धीर ॥

महाराज रघुराज सिंह न भी सूर के कलापक्ष की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

भने रघुराज और कविन अनूठी उक्ति ।

माहि लागी जूठी जानि जूठी सूरदास की ॥

प्रस्तुत प्रबंध को पढ़कर यदि सहृदय पाठकाम किसी नवीन दिशा का आभास हो सक तो मैं अपने प्रयत्नको सफल समझूँगा। मरे प्रिय शिष्य श्री वाल्मीकि त्रिपाठी एम ए इसे 'प्रथम प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं। अतः मेरे परिश्रम के साथ इसमें उनकी श्रद्धा का भागदान भी सम्मिलित है। परम ब्रह्म उन्हें मंगस्वी करें।

देवोत्पान एकादशी स० २०२२

भागवतम्

९/१७ आश्विन नगर

बानपुर

शुभोरात्रि गमाँ

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१ आचार्य बल्लभ और महात्मा सूरदास	९ १६
२ सूरदास की रचनाएँ	१७ २३
सर सारावली साहित्यलहरी	
३ काव्य वैभव	२४ ५५
शब्द-सम्पदा व्रज के प्रचलित शब्द संस्कृत शब्द ध्व यात्मक शब्द, लाकोत्तिमा तथा मुहावरे वृत्ति और गुण, शब्द शक्तियाँ, शब्दों के साथ श्रीढा कल्पना शक्ति जलवार योजना ।	
४ छंद योजना	५६-६६
५ वस्तु चित्रण	६७ ७५
६ गति चित्रण	७६ ७९
७ भाव चित्रण	८० ११२
दय भाव पुत्र भाव दाम्पत्य भाव, मात पित भाव सखा भाव भक्ति के धर्मोभाव, शृंगार का सयोगपक्ष मिलनभाव के चित्र, नायिका भेद भाव भेद शृंगार में धीर भाव का चित्र ।	
८ वियोग पक्ष	११३ १३७
९ वात्सल्य	१३८ १६१
१० सूरदास का हृदय	१६२ १६८

११ लीलातत्व

१६९ २१०

रास-लीला, मुरली, गोपिया, भाखन चोरी
चौरहरण और दान-लीला ।

१२ उपसहार

२११ २२८

वात्सल्य शृंगार व्यञ्जना, दुष्टकूट कल्पना,
चित्रात्मकता भावात्मकता रचनाओं का
सद्भाषितक आधार स्वभाविक एवं
साधारण सुलभ वर्णन, उक्ति
धमत्कार, आध्यात्मिकता,
सूर का काव्य क्षेत्र
में स्थान ।

आचार्य बल्लभ और महात्मा सूरदास

महात्मा सूरदास का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब देश में अपने शासन तथा से निकलकर परतंत्रता के पागल आवृद्ध हो चुका था। परतंत्रता अपने साथ जिन अभिजातों को लाती है उनके कृष्ण भी इस देश को भोगने पड़े। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने इस दिशा में कई संकेत दिए हैं यथा—

म्लेच्छान्तेषु देशेषु पापक निलयेषु च ।
सत्पीडा व्यग्र लाकष्य कृष्णा एव गतिमम ॥
मगादिताय वयं पु दुष्टरक्षा यतोऽपि ह ।
तिरोहिताधिपक्षेषु कृष्ण एव गतिमम ॥

आर्यों ने जिन्हें म्लेच्छ संज्ञा दी होगी और जिन्हें दुष्ट कहा होगा वे अपने आचरण में आर्यों से विपरीत रहें होंगे। कम का विधान बड़ा विविध है। जिन्हें म्लेच्छ कहते थे वे ही इस देश के तंत्र नियामक बन गये। आचार्य बल्लभ जैसे साधनगील सन पुरुष का इस परिस्थिति में व्यग्र होना स्वाभाविक था। दीन-हीन की अंतिम शरण भगवान् हैं। आचार्य बल्लभ जब कृष्ण की ही वरुण शरण्य कहते हैं तब उनका यही भाव है।

महात्मा सूरदास उन निन्ना आगरा और मथुरा के भाव रसकता के समीप घमना घाट पर रहते थे और स्यास ले चक्के थे। उनके भक्त हृदय की स्थािति चतुर्दिक् व्याप्त हो चुका था। वे भक्ति के पद बनाकर गाया करते थे। आचार्य बल्लभ सूर की स्थािति से आकर्षित होकर ही उनके समीप

पट्टच और वह दबी सयोग ही था कि दोनों एक ही भक्ति-माग पर आरुढ़ हो गये ।

कहा जाता है कि आध्यात्म महाप्रभ का प्राकट्य हुआ तभी महात्मा सरदास का भी सर सोरभ में सूरसारावली की निम्नांकित पक्तियों के आधार पर हमने सूरदास का जन्म स० १५१५ स्थिर किया है—

गुरु परसाद हात यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन ।
सिख विधान तप क्रियो बहुत दिन तरु पारि नहि सीन ॥

इन पक्तियों के अनुसार सरदास का ³¹सपन जीवन की परिपक्वतावस्था में अर्थात् सरसठ वर्ष की आयु में भगवत्तदशन हुये । यह गुरु दृष्टा का ही प्रसाद था । सूरसारावली में—

सहस रूप बहुरूप रूपपुनि एक रूप पुनि दीप ।

छन्दों द्वारा इसी दंगन की अभिव्यक्ति की गई है। साहित्य लहरी में दा पं सूरदास के यत्नित्व पर प्रकाश डालने वाले हैं । एक पद का सम्बन्ध उनका बना है साथ ही और दूसरा पं साहित्यलहरी के निर्माणकाल का द्योतक है—

मुनि पुनि रसन के रस लक्ष ।
रसन गीरी-नन्द का लिखि सुबल सम्बल पेश ॥
नन्द-नन्दन मास छय ते हीन ततीया बार ।
नन्द-नन्दन ज म ते हैं बान सुख आमार ।

इस पं में नन्दन मास अक्षय तृतीया कृतिका नक्षत्र सुकम योग और रविवार दिवस तथा सुबल स० का उल्लेख है । इनमें एक आध को छोड़कर सब स० १६२७ में पड़ते हैं । सुबल का पर्यायवाची वर्षभ सबत भी इसी वर्ष में पड़ता है अतः सूर स० १६२७ तक जीवित था यह सहज अनुमान का विषय है । दूसरे पद में अनुसार सूर महाकवि चन्दबरदाई के वंश में उत्पन्न हुए थे यह तथ्य भविष्य पुराण द्वारा समर्थित है और भार—
तत् हरिश्चन्द्र तथा अन्य अनेक विद्वानों द्वारा स्वीकृत है । वल्लभ सम्प्रदाय में उन्हें सारस्वत ब्राह्मण कहा जाता है वह भी इस सभ्य के विरुद्ध नहीं है । सूरदास ने स्वयं अपने को दबीपुत्र लिखा है । बाणभट्ट ने अपने बना का सबध सरस्वती के साथ स्थापित किया है । पौराणिक क्षत्रीय सरस्वती का अध विद्या है, ब्राह्मण ज्ञान के निधान और विद्याघन के स्नातक मान जाते हैं ।

कान्हीरी तथा महाराष्ट्रीय भट्टों का एक बग अपने को सारस्वत कहता है। ब्रह्मभट्टों के गोत्र को जीचने में ज्ञात हुआ कि इनके गोत्र अथ ब्राह्मण के समान ही हैं। ऐतिहासिक ज्ञाता चन्दवरदाई का भी भारस्वत ही मानते हैं। 'सूरसौरभ' में हमने एतदविषयक पुष्कल सामग्री एकत्र कर दी है।

ऐसे उच्च वर्ग में उत्पन्न होकर सूरदास जिस पथ के पथिक बने वह उनके अभिजात्य के अनुकूल ही था।

भक्तिधारा

सूरदास के समय में वृजमण्डल भक्ति प्रधान सम्प्रदायों का केन्द्र बन रहा था। यह भक्ति कतिपय विद्वानों के अनुसार दक्षिण से उत्तर में आई। 'भक्ति का विकास' ग्रन्थ में हमने भक्तिधारा का बाल्य ही प्रारम्भ हुआ निश्चित किया है। यह अवश्य सत्य है कि हिन्दी के भक्तिकाव्यकाल का उद्गम जिन आचार्यों द्वारा हुआ उनमें रामानन्द जी को छोड़कर सब दक्षिणार्थ थे। आचार्य शंकर, रामानुज माध्व विष्णुस्वामी निम्बाक, बल्लभ सभी दक्षिणार्थ हैं। वह के प्रति सबको दृढ़ आस्था है। वह में जा प्रायनायें आती हैं उनमें मानव-हृदय की अतीवकातर परन्तु गान्धर्व पुकार अन्तर्हित है। भक्ति तरंगिणी और श्रुति संगीतिका में वेदमन्त्रों के जो गीतानुवाद प्रस्तुत किये गए हैं उनमें भाव भरित भक्त हृदय का आत्म निवेदन अपने पारु रूप में प्रस्फुटित हुआ है। इन भावनाओं में शैवस्तिक ही नहीं सामाजिक

१. काव्योपजीवी तथा बन्धक ब्राह्मणों ने मिलकर किसी समय वृज के आमपास अपना एक बग बनाया था जिस ब्रह्मभट्ट कहते हैं। मूल मागधों के साथ इस बग का कोई सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि भट्ट 'ग' में भी अभिहित होते हैं।

२. कबी मरु भविष्यन्ति नारायण परामणाह
कवचिन, कवचिन महाराज द्राविणेपु च भूरिया

भागवत ११.५.३८-३९

दक्षिण के आल्वार अपनी भक्ति भावना के लिए प्रख्यात हैं। इनकी प्रतिमा भी दक्षिण के वरकल मन्दिरों में स्थापित हैं। आन्तरन का नाम इनमें विशेष रूप से प्रख्यात है।

सहस्र भी हैं। बहिर्य प्रायनामा म प्रम को माता पिता विधाता बंध सखा
लादि कई रूपों में स्मरण किया गया है। जिस रूप माधुर्यभाव की भक्ति कहते
हैं उसमें बाज भी वस्त्र वाम विद्यमान हैं। वेद से चलकर यह भक्तिधारा
कभी सांद्र कभी विरल रूप में अपने अस्तित्व को सायक करती हुई आज
चली आई है। मर के समय में "सका सी" रूप था।

पाञ्चरात्र आगम महाभारत भगवद्गीता नारद भक्तिसूत्र
साहित्य भक्तिसूत्र आदि ग्रंथों में भक्ति के स्वरूप की मीमांसा उदर में
होती है। महाभारत का नारायणी पर्व जिस एकात्मिक भक्ति कहता है गीता
जिस अंत में चित्त और परमात्मा कहती है भक्तिसूत्र जिसे परम प्रेम
रूप तथा परानुरक्ति का नाम देते हैं। परवर्ती कृष्ण आचार्यों ने जिसे
पटविद्या गणनामिती की मना दी और एकादग आसक्तिया में जिसे विभक्त
किया भागवतकार ने जिस श्रवण कीर्तन आदि नौ विभागों में विभक्त किया
मूर ने उसी पद्धति का अनुसरण करने हुए भक्ति को चार चरणों में बाँट
आदि सवर्ग उच्चतर स्थान दिया।

महात्मा सरास ने इस भक्ति की सम्पूर्ण नीला आचार्य बल्लभ से
मूलों की जो स्वयं विवक्षायी के मतानुयायी थे। बल्लभ के गुरु श्री
नारायण भट्ट थे। अथ मतानुसार माधवद्र पुत्र जो मध्वसम्प्रदाय के
आचार्य कह जाते हैं। कृष्ण चतुर्थ के गुरु भी यही थे। इनके गिर्य माधव
दान के आचार्य बल्लभ के छोटी पुत्री के गुरु थे। आचार्य के लक्ष्मी गदाधर
का मित्रान भी किसी ने किसी रूप में पहचाने चला जाता था। पुष्टिमात्र
भगवत कृष्णकल्मष अनुग्रह माग है। आचार्य बल्लभ ने इस जो रूप ग्रहण
किया वह बल्लभ नूतन था।

प्रम में जब हम भक्ति आगमन का प्रारम्भ हुआ तब मोदा वगैरे का
प्रमत्त था। इतिहासकारों ने मुस्लिम शासकों के आचार्यों का जो विवरण
दिया है उसमें मयरा और च गवन के मंदिरों के तोड़ जाने तथा मयरा के
घाटों पर स्नान करने के निषेध आदि भी सम्मिलित हैं। आचार्य बल्लभ ने
अपनी सत्रयात्रा में इन अत्याचारों का विरोध किया। इसका प्रभाव सिकन्दर
काशी पर भी पड़ा होगा। यह शासन जीवन के अंतिम समय में दयालु हुआ
गया था और बला विध्वंस के राजा अल्लखन नारायणीस जो की कृति
एकान्त माग तन्त्रिका से प्रेरित होता है, वह आचार्य बल्लभ का प्रसन्न भी
बन गया था।

आचार्य बल्लभ के पिता श्री लक्ष्मण भट्ट ने उन्हें गापाल मन्त्र की दीक्षा दी थी। सन १४८७ ई० में जब लक्ष्मण भट्ट का निधन हो गया तो आचार्य बल्लभ भारत-यात्रा पर चल पड़े और पुष्टोत्तम के दरबार में पहुँचे। वहाँ एकमात्र देवकी पुत्र गोतम। एकादवी देवकीपुत्र एव। मन्त्रादि एक तस्य नामानियानि परमाप्येकम तस्य देवस्य सेवा।

इस श्लोक द्वारा उन्होंने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया उनसे प्रभावित होकर राजा ने इनका सम्मान किया। इसके उपरान्त वे पण्डरपुर पहुँचे और वहाँ में विजयनगर गये। राजा कृष्णदेव राय ने उनका मन-कोरसब किया। फिर वह बागी आ गये बागी से जगन्नाथपुरी। इन्हीं दिनों श्री देवन भट्ट की पुत्री महालक्ष्मी के साथ उनका विवाह हुआ। इसके उपरान्त वह व्रज आते में आये। श्रावण शुक्ल एकादशी गुरुवार १५६३ विजयमी के दिन उन्होंने गाकुल में गावि द घाट पर विश्राम किया। यह तिथि 'सम्प्रदाय' में माय समझी जाती है उनके सिद्धांत रहस्य ग्रन्थ के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य बल्लभ भक्ति मार्ग की मर्यादा में समस्त वस्तुओं को भगवत् समर्पित करके काय करन को महत्त्व देते हैं। यही आत्म निवेदन भी है। जिसमें ब्रह्मभाव को प्राप्त हुआ भक्त उसी प्रकार निमल हो जाता है जिसप्रकार पुण्यता या जाह्नवी के जल में मिला हुआ नालियों का जल। सम्प्रदाय में गण दोषा तथा ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा भी प्रसिद्ध है। प्रथम की नाम निवेदन और द्वितीय का आत्म निवेदन कहते हैं। गाकुल से वे गावधन पर्वत पर स्थित एक मंदिर का देखने गये जहाँ उनके गुरु माधव वेदपति रहा करते थे। मति जी के ही नाम पर समीपस्थ जतीपुरा ग्राम भी है। सन १४८१ ई० के फाल्गुन मास में इस मन्दिर में स्थापित देव दमन मूर्ति की पूजा का उत्सव हुआ। यति जी सन १४८३ ई० में जगन्नाथपुरी गये और वहीं स्वगवासी हो गये। इस मन्दिर के निकट ही पूरनमल्लिकजी नाम नवीन मन्दिर की नींव रखी और दब-दबन मूर्ति का नाम आचार्य बल्लभ की सम्मति से श्रीनाथ जी रखवा गया।

व्रज से वह पुन जगन्नाथपुरी गये फिर बागी में आकर मुवाधनी की रचना की। बागी में अड़ल पहुँचे और पुन व्रज में आये। जसा लिख चुके हैं वे स्मरता के समीपवर्ती गाघाट पर भी पहुँचे जहाँ महात्मा सूरदास रहते थे।

यही सूरदास आचार्य बल्लभ की चरण में पहुँचे। और उनसे दोषा ग्रहण की। विरिराज पर श्रीनाथ मंदिर की स्थापना हो चुकी थी। सबत

क मूय विमान तथा यागाथमो तक पहुँचते थे। साधुओं के इस आवागमन ने इन वसुधा को एक कुटुम्ब का रूप दे दिया था। आज के बाद मानवता के भाग में विभिन्नता की खाँची खोजत हैं और पारस्परिक सघर्षों का प्रोत्साहन देते हैं, पर मनो के मण्डल मानवता का प्रचार करते थे। हृदय हृदय में एकता की रागिनी का गुंजायमान करते थे और सबके विकास का भाग प्राप्त तथा उ मुख करते थे। सूर का हृदय की यह एकता परम्परा द्वारा सहज सुलभ थी। इसीलिये उनकी रचनाओं में कटक्तिया का अभाव है। एक का दूसरे से नीचा दिखान की प्रवृत्ति अनपलक्ष्य है और जिस हम सासारिकता कहते हैं अथवा सामाजिकता और विषमता कहते हैं उसका प्रभाव तक दृष्टि गाँवर नहीं होता।

सूर ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उनके नाम से प्रचलित कई ग्रंथों का उल्लेख हमने मूर सौरभ में किया है पर स्याति रूप में उनके तीन ही अब तक सब की जिल्हा पर विद्यमान रहे हैं। इनके नाम हैं— १ सूरसागर २ सूर सारावली ३ साहित्य लहरी। इन तीनों में सूरसागर ही कीर्ति का प्रमुख आधार है। है तो यह सागर पर आकाश विटठलनाथ की दृष्टि में यह भव सागर से पार करने वाला एक अदभुत अहाज है। इसका निर्माण कर सर की सहजनी अतप आत्मा सन्निधि पा सकी थी और अब तक जो उस पन्था रहा है वह भी गति प्राप्त कर रहा है और जब तक उसका अध्ययन जीवित है सभा उस पन्थे पर आप्यायित हाते रहेंगे।

सूरसागर की कई प्रतियाँ अब तक उपलब्ध हैं। नवलकिशोर प्रसन्ननन्दन सजा प्रति प्रकाशित गयी थी वह भ्रमात्मक थी। बकदेश्वर प्रसन्ननन्दन से सन् १९८० में सजा प्रति प्रकाशित हुई वह बहुत गुद थी। अब इसका एक नवीन संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है पर पदों की संख्या में अनेक अगदियाँ हैं। इन अगदियों का विवरण सर सौरभ के चतुर्थ संस्करण के पृष्ठ १०८ १ ९ पर दिया हुआ है। स्वर्गीय रत्नाकर जी ने नागरी। प्रचारिणी सभा के तत्वाधान में सरदास की कई प्रतियों का मिलान करके एक शुद्ध संस्करण कई मण्डल में प्रकाशित किया था परन्तु उनके निधन से यह काम अपूर्ण हो रहा गया। उनके उपरांत ५० नन्दलाल बाजपेयी ने सूरसागर का सम्पादन किया और वह दो खण्डों में नागरी। प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हुआ। दोनों खण्डों में दो मी तीन सन्निधियाँ तथा सरसठ प्रमाणित पत्र दिये गये हैं। काकरोली वाली प्रति में पदों की संख्या इससे भी अधिक है काशी वाली साहज की प्रति में लगभग ६ हजार पदों का सप्रह

है। निर्वसिंह सराज के रचयिता ने ६० हजार पदों के देखने की बात लिखी है पर अभी तक जितने पद उपलब्ध हुए हैं उनकी संख्या सात हजार में ऊपर नहीं पहुँचती। सारावली में एक लाख पदबन्तों की उक्ति आती है। यदि पदबन्तों की दृष्टि से देखा जाय तो एक लाख पदबन्त दस हजार पदों में समाविष्ट हो सकते हैं। अतः मात्रा में पदरचना कर लेना कोई असम्भव बात नहीं है।

सूरसागर के पद भागवत के आधार पर द्वादश स्कन्धों में विभाजित किये गए हैं परन्तु वे सर्वांगत भागवत का अनुवाद नहीं हैं। सूर ने इस रूप में उनकी रचना की भी नहीं होगी। सूरसागर के प्रथम स्कन्ध में आत्म निवेदन सम्बन्धी पदों की अधिकता है। हमारी सम्मति में ये पद आचार्य बल्लभ द्वारा दीक्षित हान के पूर्व ही कवि द्वारा निमित्त हो चुके थे। इन पदों में सूर के हृदय का दय-कातर क्रन्दन तथा पञ्चाक्षताप भरा पड़ा है। ज्ञान और वराग्य मायामाह के पात्र अज्ञान और अघकार ससार की असारता आदि विषय इन पदों द्वारा अभिव्यजित होकर विकास की जिस स्थिति की सूचना दत्त हैं वह सूर का उच्चकाटि का सत सिद्ध करती है। ये पद मम-स्पर्शी हैं और सूर के हृदय की गम्भीर बढ़ना का प्रगट करत हैं। कुछ पद ऐसे भी हैं जिनपर भागवत के प्रथम स्कन्ध की छाया है। इन पदों में ध्यास अवतार गङ्गदत्त की उत्पत्ति, सूर्य घोनक-सम्बा, भोष्म का दहत्याग श्री कृष्ण का द्वारका गमन युधिष्ठिर का वराग्य परीक्षित का जन्म, ऋषि का शाप आदि विषय वर्णित हुए हैं। द्वितीय स्कन्ध के प्रारम्भ में भक्ति और मत्सर्ग की महिमा भक्ति के साधन आत्मज्ञान तथा भगवान् के विराट् रूप में आरती का वर्णन है। तृतीय पदों में भागवत के आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति विराट् पुरुष चौबीस अवतार ब्रह्मा की उत्पत्ति चार इलाक आदि का वर्णन है। तृतीय स्कन्ध में उद्धव विदुर-सम्वाद, विदुर की मन्त्र से ज्ञान का प्राप्ति सप्तर्षि चारमनु देवामुर जन्म बाराह जीतार कदम देवहूति का विवाह कपिलमुनि का अवतार भक्ति की महिमा और देवहूति का हरिपद की प्राप्ति आदि का वर्णन भागवत के तृतीय स्कन्ध के अनुसार है। कुछ विषय ऐसे हैं जो भागवत में अधिक हैं जैसे विदुर जन्म, रुद्र उत्पत्ति आदि। और कुछ विषय छोड़ भी दिये गये हैं जैसे सांख्ययोग, पुरुष प्रकृति आदि के वर्णन। सम्भव है सूरसागर की किसी अन्य प्रति में इन विषयों का वर्णन किया गया हो।

चतुर्थ स्कन्ध में भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में आये हुए विषयों का अतीव

समिप्त किन्तु मार्मिक वणन है यथा यथपरम् अवतार पारवती विवाह
 घन कथा, पृथु अवतार तथा पुरजन आख्यान । इसी प्रकार पंचम स्कंध में
 भयभ देव जडभरत आदि की कथा भागवती कथा का सक्षिप्त रूप है ।
 षष्ठ स्कंध में भागवत के आधार पर अजामिल वहस्पति, वनासुर आदि
 आदि की कथाएँ वर्णित हुई हैं । सप्तम स्कंध में नरसिंह का अवतार आगमन
 के आधार पर वर्णित है । परंतु शिव और नारद की कथाएँ भागवत में
 अधिक हैं आठवें स्कंध में गजेन्द्र बाध कूर्मवितार समुद्र मंथन दामन तथा
 मत्स्य के अवतारों का वर्णन है भागवत के ही अनुसार परंतु संक्षिप्त
 रूप में है ।

नवम स्कंध में भागवत के अनुसार राजा पुरुरवा और उर्वशी का
 उपाख्यान क्यवन श्रृंगि की कथा हलधर विवाह राजा जम्बराय और सीभरि
 श्रृंगि के उपाख्यान गगावतरण पराशराम और अत म रामावतार का वर्णन
 है । भागवत के दस स्कंधों में राम की कथा संक्षेप में कह दी गई है परंतु
 सूरदास में उसका विस्तार पूर्वक वर्णन पाया जाता है । इसी स्कंध में नन्द
 तथा कच नन्द्यानी की कथाएँ भी विस्तार से वर्णित हैं । गीतम अहिंसा की
 कथा भागवत के नवम स्कंध में नहीं है । नागराप्रचारिणी सभा वाले सूर
 सागर के संस्करण में यह कथा छठ स्कंध में समाविष्ट है । इस स्कंध में राम
 के बालरूप का वर्णन सूर की प्रवृत्ति के अनुकूल ही है । सीता का विरह
 वर्णन भी अनीव भवस्थिति है ।

दशम स्कंध सूरसागर का संवत्स है और उसमें चार सप्तम स भी
 अधिक पद हैं । मर की समस्त कीर्ति का आधार यही स्कंध है । सूर की
 काव्य प्रतिभा कमनीय कला भावुकता व्यंग्य एवं विदग्धता सभी दस स्कंध में
 अपनी चरमसीमा का स्पर्श कर रहे हैं । भागवत में भी यह स्कंध सबसे बड़ा
 है । सूरसागर में इसके दो भाग हैं— पूर्वाह्न और उत्तराह्न । पूर्वाह्न में
 जन्म में लेकर कमबध पयन सभी बाल लीलाओं का वर्णन है । सुप्रसिद्ध
 भ्रमरगीत भी यही के अंतर्गत है जिसमें सूर ने गायिकों के विरह का
 अतीव हृदयद्रावक चित्र खींचा है । और उद्वेग प्रसंग के यात्रा स निगुण पर
 सगुण याग पर प्रेम और ज्ञान पर भक्ति की विजय पताका प्रतिष्ठित की है ।
 प्रेम सर की भावना का प्रधान दोष है और उसने सभी रसों का उसने अनीव
 विस्तृत एवं प्रभावशाली, मार्मिक वर्णन किया है । सूर ने प्रेम तत्त्व का
 लौकिक और आध्यात्मिक दोनों रूपों में प्रस्तुत किया है ।

भागवत में दशम स्कन्ध का भाग म विभाजित है। उसके विषयों का जो तात्त्विक विश्लेषण आचार्य क्लृप्त न किया है उसकी ओर पहल ही संवत कर चक है। सूरसागर में उत्तराद्ध का भाग भागवत की भांति बहने आकार का नहीं है। इसके कवल एक सौ अठतालीस पद हैं जिनमें जरासन्ध से युद्ध शरका निर्माण कालयवन दहन, द्वारका प्रवेश रुक्मिणीहरण प्रद्युम्न का जन्म सत्यभामा और जामवन्ती से विवाह भीमासुर वध प्रद्युम्न विवाह कृपा अनिरुद्ध कथा जरासन्ध गिणुपाल, गाल्व, दन्तवन और बल्लभ का वध मुदामार्चार्चन कुरुक्षेत्र में पुन गोपी आदि से मिलन आदि विषयों का वर्णन भागवत के ही अनुसार है। ग्यारहवें स्कन्ध में उद्धव वारिका आश्रम गमन नारायण अवतार तथा हंसावतार का वर्णन है। भागवत के इस स्कन्ध में ज्ञान भक्ति धराय आदि अनेक विषयों का सम्भार प्रतिपादन किया गया है। आचार्य क्लृप्त की दृष्टि में भी यह स्कन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण था परन्तु सूरसागर में सम्भीर विवचन वस किया जाता। क्या भावना उस सहन कर पाती? दान अपने स्वान पर ग्रहणीय है पर साहित्य का तो आधार ही भाव है। वह ज्ञान का भी आत्मसात करता है पर अपने रूप में साहित्य में ज्ञान भावों को अपने सिरपर रख लेता है। भाव वहाँ पर रखी है तो दान उसका रूप हन्य घनी है तो विस्मरण उसका बाह्य। छायाय न इसी लिय साम का श्रुचात्रा पर आरुण कर दिया है। साहित्य में भाव का साम्राज्य है विवचन का नहीं।

सूरसागर के बारहवें स्कन्ध में बुद्धावतार बल्लभ अवतार और राजा परीक्षित तथा जनमजय की कथाएँ हैं।

सूरसारावली

इसके प्रारम्भ में मंगलाचरण का पद है। जो कतिपय शब्दों में परिचय देता है भाव सूरसागर के प्रारम्भ में भी पाया जाता है। सारावली का प्रारम्भ निम्नांकित पंक्तियों से होता है—

अविगन आदि अनन्त अनुपम अलक्षपुण्य अविनाशी ।

पूरण कहा प्रकट पुरपातम निन निज लाज विलासी ॥

सम्पूर्ण सारावली अनेक तथ्यों के अनुशीलन करने पर एक बहुत ही गहरी-गहरी प्रतीति होती है। यह निम्नांकित पंक्ति में मिट जाती है—

खेलत यह विधि हरि हारी तो हरि होरो हो वे विदिन यह वान ।
यह पक्ति छंद सख्या ग्यारह सौ चार के पश्चात् फिर दोहराई गई है । छन्द
न० १६ भी इस तथ्य का अनुमान करता है —

आनावारी नाय चतरानन करी भट्टि बिस्तार
हारो भजन का विधि नीवी रचना रचे अपार ॥

छंद सख्या २५९ म लिखा है—

यह विधि हारी खेलन खेलन बहुत भात सुख पाया ।
घरि अवतार जगत म नाना भक्तन चरित दिखाया ॥

हाली का निर्देन सारावली क अर्थ छन्द म भी है । होली क पक्ष
पर जा पाग माय जात हैं उनकी एक और तान बिल्कुल वसी ही होती है
जमी ऊपर उदघत पक्ति में प्रकट हो रही है । सारावली क ग्यारह सौ सान
छंद हाली के इस बहुत पान को कहिया मात्र हैं । सारावली म पुरपातम
बदावन कु जलगा कालिंदी सारमहम गावधन पवत भट्टि रचना ग्रहा
सतरूपा स्वायभू बाराह अवतार कपिल सात लाक भव खण्ड महाद्वीप चौबीस
अवतार आदि विषयों का मनारम वर्णन हुआ है । रामावतार क वर्णन म
राम क बालरूप के प्रति मूर क हृदय की ममता विविध रूप म आभयक्त हुई
है । मूर क राम और सीता भी हाली खेलत हैं जिसका वर्णन छंद सख्या
०९ म ३१३ तक है । सारावली म मूर न महात्मा बुद्ध का पाखण्ड का
खटन करन वाला लिखा है । छन्द सख्या ३६० म कृष्णावतार की गाथा
प्रारम्भ हुई है और उसम कृष्ण सम्बन्धी प्रायः सभी बातें आ गयी हैं । सारा
वली भागवत और मूरमागर दोनों की सारसूचा प्रतीत होती है । छंद सख्या
११०३ म मूर ने इस हरिलीला का सार भी कहा है । सारावली म कौरव
पाण्डव युद्ध की कथा स १५ म वर्णन का गई है । उसम माखन चारी अधि
पान मान आदि की लीलायें भी आ गई हैं । दण्डकूटा का भी उल्लेख है ।
राग रागिनिषा क नाम भी पाये जात हैं । बीरासी काम की परिश्रमा वाले
ग्रज क बनाया भी वर्णन है । मूर न भगवान की ^{नीति} निवत लीला को ही सब
कुछ माना है । इस क अतिरिक्त अर्थ सब भ्रम मात्र है ।

साहित्यलहरी

इस का निर्माण स० १६२७ म हुआ । इसका विषय विकीर्ण है । जहाँ
इस म बाल-लीला के पद हैं वहाँ भयानिनी एवं विद्यानिनी स्वकीया एवं

परकीया नायिकाओं व भी चित्र हैं। श्लेष के आधार पर अलंकारों का भी निरूपण किया गया है। इस की शली दुरुह है जिसमें दष्टकूटा की भरमार है। दष्टकूटा का अर्थ लगान में कठिनाई पड़ती है। अलंकारों में यमक श्लेष रूपकातिगर्भाति मुग्धा अप्रस्तुत प्रशंसा समासाति तथा अयाति आदि अथ दुरुहता उत्पन्न करने के लिये प्रख्यात है। साहित्य में प्रयुक्त कुछ गद्य अपने वाच्यार्थ का छाड़ कर विशिष्ट अर्थों में रचा हुआ है जिस दधि सुत चन्द के अर्थ में शलननया पावती के अर्थ में। कदा कही गद्य साम्य नवीन अर्थ की उत्पन्न करना कर देता है। जम मांस महीन का छातक बन जाता है। कुछ शब्द सख्या विशेष का भी अर्थ देने हैं जम विधु से एक सख्या तथा ग्रह से ती सख्या। साहित्यलहरी में दष्टकूटा के ऐसे चमत्कार पद्यान्त मात्रा में विद्यमान हैं। हम दष्टकूट-पद विन्व के अर्थ किसी साहित्य में क्याचिन ही हो।

साहित्यलहरी के प्रत्येक पद में किसी न किसी अलंकार का निर्देश अवश्य है। अलंकारों की परिपाटी हिन्दी में चन्द्रवरदायी के समय से ही चल पड़ी थी। आचार्य विश्वनाथ के साहित्य-रूपण से रमभक्त के साथ नायिका भक्त भी प्रारम्भ हुआ गया था। साहित्य लहरी में ये दोनों बातें विद्यमान हैं। गुह्य बातों को दष्टकूट के रूप में प्रकट करने की प्रणाली भी प्राचीन है। विद्यापति की पदावली, कबीर की उलट बासिया अमीर खसरो की पहलिया नाथ पयियों के कतिपय छन्द एवं पद रासा के श्लेष महाभारत के गूढार्थ, वगैरे सम्प्रदान आदि दष्टकूट शाली में मण्डित हैं। गोस्वामी तुलसीदास की सतसई में भी कई दाह दष्टकूट शाली के हैं। जो उद्गम्य गीत काव्या के दष्टकूट में है लगभग वसा ही मूरदास की साहित्य लहरी के दष्टकूट का है। जो विग्न सारावला और साहित्यलहरी का मूरदास की रचना स्वीकार नहीं करते उन्हें 'मूरसीरम' में मूरदास के पद्यों की एकता गीतक प्रकरण का पन्ना चाहिये। मूरदास के पद्यों में सूर सूरज मूरदास मूरजदाम और सूरदास नाम आये हैं। यह भी एक ही कवि के कई उपनाम हैं जिनका नाम विद्वान सरसीरम तथा मूरदास और भगवत् भक्ति नाम के ग्रन्थों में हमने किया है।



तृतीय अध्याय

काव्य-वैभव

काव्य का प्रमुख चिह्न भाव-परायणता है। काव्य-कला भाव पर ही आधारित है। भाव स्वयं एक संगीत है जो घर-एक-अधर सभी का प्रभावित करता है। निश्चिन्त अधिगमित तथा अधिगित सभी भाव का प्रति आकर्षित होता है। संगीत में भी यही तत्त्व विद्यमान है। उस का भी आकर्षण अनुपम है। संगीत लहरी भग-एक-सब-तक को मुग्ध कर देती है। स्वरो का विनय भ्रम में आवद्ध होना एक ऐसी लय उत्पन्न करता है जो भाव की ही रूपांतर मात्र है। काव्य भी संगीतमय होता है। नय-तुल-छाँदा में राग-एक-राग-निमा में जो सप्तस्वर-तः संगीतात्मकता है अथवा भावमयता है वह धराधर का अपने आकर्षण पात्र में क्या आवद्ध कर लेती है? कहा जाता है कि संगीत एक काव्य जाग्रत का सुप्त-एक-सुप्त का जाग्रत कर सकता है। साम का संगीत अपने दंग में प्रस्थित रहा है और परवर्ती संगीत में भा-वायु का स्त-य तथा दीपक को पृञ्जवर्धित कर दिया है। भावण में मल्लहार गाय जात है। उन की स्वरावलि आकाश की स्वरावलि का साथ यदि एक-सम हो गयी अथवा उस प्रभावित कर सका तो पूर्व विद्यमान परिस्थिति में परिवर्तन अवश्य कर देगी। विज्ञान अंतरिक्ष में प्रवाहित प्रकाश लहरा तथा ध्वनि लहरा से आज हमें परिचित करा रहा है अतः संगीत और काव्य का उत्पन्न प्रभाव की वैज्ञानिक परीक्षा भी की जा सकती है। दार्शनिक दृष्टि से इस भाव का निरिच्छा-निर्मित का मूल कह सकते हैं। यह भाव रम का जनक है आनन्द का उत्पादक है ऐसा अभी तक सभी आचार्य स्वीकार करते रहे हैं। आनन्द वाद एवं सम्प्रसाद का ही नहीं सभी आगमा का एक मात्र अंतिम लक्ष्य है।

भट्टप्रवर महाकवि भवभूति क गद्या में वाणी अथ वा अनुधावन करती है। भाव या विचार जहां बहो होंगे वाणी उन के साथ अनुचर की भांति रुगा रहगी। कुछ विद्वानों की अनुचरता सटक्ती है व भाव और वाणी दाना वा एक दूसरे में सम्पृक्त हुआ अनुभव करत है। महाकवि वाल्मीकि न रघु-रत्न प्रारम्भ में जगत के पितर पावती और परमेश्वर का नाम और अथ म उपमित किया है। वस्तुतः वाणी का पराम्प जिम मूल उत्पन्न भा कह सकत हैं गद्य और अथ व सम्मिलित रूप का ही नाम है जिस किता परिभाषा के अभाव में—अनिवचनीय ही माना जायगा।

वचनीयता वाणी के पश्यन्ति रूप से प्रारम्भ हातो है और अ पाठन से पाठन अनिरुक्त से निरुक्त तथा निवचनीय से वचनीय बनना जानी है। यह साम्यावस्था से विषमता की आर तथा एकता से जनकता की आर प्रमाण है। काव्यगत गद्य की अनकरूपता एवं विभिन्नता जहाँ हम विविध भावा एवं विचारों का बाध कराती है वहाँ का य की भावात्मकता हम विषमता एवं नानारूपता से हटा कर उस साम्यावस्था का आर भी ग जानी है जहाँ विगुह धृत य है अकारण आनंद है जहाँ वक्ष-वृक्ष नही दीपक-दीपक नहीं, मया-वया नहीं मग-मग नहीं सप-सप नहीं पक्षी-पक्षी नहीं और मनुष्य-मनुष्य नहीं एक गद्य में जो रस की स्थिति है अथवा आनन्द का व्यवस्था है।

भाव अथवा श्रमयता पद्य में ही नहीं गद्य में भी हा सकती है पर य गद्य साधारण गद्य से भिन्न हाता है। साधारण गद्य उस प्रभाव से वचन है उस आकर्षण से मूल्य है जो उसके विनिष्ट रूप गद्य काव्य का प्रमुख चिह्न है। वाणभट्ट की काव्य-अथवा हयचरित का गद्य यत्नान्त आगमा का गद्य नहीं है। विज्ञान-वर अथवा रघुनन्दन के निवचन आप के विचार से सकत हैं भाव नहीं। वाणभट्ट न गद्य का प्रयोग किया है पर वह भाव गद्य है और सामान्य उन गद्य-का य का सजा दी जाना है। नारा पद्य में प्रभाव मूल्य हाता है। उसकी पद्यात्मकता छान्दस्यता नियमित वण माशा-वचना घाटा दर के लिय जाना का गद्य का आकर्षित करण पर भाव के अभाव में मन का आकर्षित नहीं कर सकगा।

काव्यगत गद्य महा दगाआ से सामान्य रूप से प्रमविष्ट न हो हात है कविता का शब्द-भण्डार एक समान हाता है। सब का अपना-अपना अद्विज सम्पत्ति है सबका अपना-अपना दाल एवं मुखार है। गद्य मग्यता एवं

भाव सम्पदा जिस कवि के पास जितनी अधिक है, उतनी ही वह कवि समर्थ एवं शक्तिशाली है।

कछ कवि आगे बढ़ते हैं कुछ ऊँचे उठते हैं कुछ गहराई में प्रवेश करते हैं और कुछ उस गहराई से मोती ढूँढ़ लाते हैं। आगे बढ़ना शब्द सम्पदा विचार बभ्रव एवं भाव प्रवणता का अचन करना है ऊँचे चढ़ने में अथर्वोक्त भणित भूमिमा तथा कला बदध्य की उपलब्धि है और गहरे घसने में रसवत्ता है। जो कवि गहराई में प्रवेश करता है उसके विमल विचार एवं भाव भाव सर्वोत्तम शक्ति द्वारा ही अभिव्यक्त होते हैं। वहाँ आप शक्ति से भाव का और भाव का शक्ति से पथक नहीं कर सकते। कानों के शक्ति में वहाँ अर्थ भाषा का कुशलतम अभिव्यक्ति होती है। जिस हम कवि की छाप कहते हैं वह ऐसी ही काव्यो में देखी जा सकती है और गहराई में जाकर मोती ढूँढ़ लाने वाले बहुत ही थोड़े कवि होते हैं। हमारे सूर ने गहराई में ढूँढ़कर खूब मोती ढूँढ़े हैं।

महाकवि सूरदास के काव्य बभ्रव की परीक्षा जिन मनीषियों ने की है वे सब समवेत स्वर से भाव विभ्रव ही नहीं उनकी शब्द सम्पदा की भी प्रशंसा करते हैं। स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'शब्द' में सूर में जितनी भाव विभ्रव है उतनी ही वाग्विदग्धता भी।' वात्सल्य एवं विप्रलम्भ शृंगार का तो वे अद्वितीय कवि हैं। वात्सल्य भाव का तो वे कोना-काना पाँव आये हैं और विप्रलम्भ का क्षेत्र में उन्होंने जिस भाव दशाओं का उल्लेख किया है उसमें से अनेक श्लाघा का आचार्यों का नामकरण करना पड़गा। यह प्रशस्ति सब कवियों का भाग्य की बात नहीं है। सूर की शब्द सम्पदा भी अतुल है। शब्द सम्पदा के साथ-साथ उनका प्रयोग भी अभूतपूर्व है, एक ही बात को वे न जान कितने रूपों में उपस्थित करने की शक्ति रखते हैं। एक बात को कहने के न जान उतने कितने ढंग आते हैं। आचार्य कुत्तक की वक्रा-वित्तरिमा पर विचार करें तो सूर की रचना में उसके विपुल उदाहरण देखने को मिलेंगे। शब्द सम्पदा एवं भाव विभ्रव का ऐसा धनी कवि किसी जाति को भाग्य से ही मिलता है। और विश्व में कभी-कभीही अवतार सता है।

(अ) शब्द-सम्पदा

जब हम शब्द और अर्थ की बात करते हैं तब कवियों के कलानुपुण्य के विवेचनों में सर्वप्रथम शब्द की मीमांसा करनी पड़ती है। सूर की शब्द

सम्पदा अपरिमित है। वे व्रज में रहने थे अतः व्रजभाषा के गान्धी तथा उनका प्रयोग से परिचित होना उनके लिए स्वाभाविक था। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था।

अथ बालिया के शब्द व्यवहार से अपरिचित थे वसन्ता ममप्र देश एक ऐसी बाली से परिचित रहा है जिसका भाषा विज्ञान के गान्धी में राष्ट्रभाषा कहा करते हैं। प्राकृत काल में भी यद्यपि महाराष्ट्री प्राकृत गौरमभी प्राकृत से भिन्न मानी जाती थी परन्तु उसकी विभिन्नता स्वल्प मात्रा तक ही सीमित थी। गण गौरमनीवन कह कर आचार्य वररुचि ने इस भाषागत एक्य की घोषणा कर दी है। भारत के मध्यदण का भाषा में जाके केवल से भारत का राष्ट्रभाषा का कार्य करती आ रही है। प्राकृत से पूर्व वाला और पाली से पूर्व संस्कृत इसी माननीय कार्य की वहिवायें रही हैं। अपभ्रंश युग में हम राजनतिक दृष्टि से कई छण्डा में विभक्त थे पर संस्कृति दृष्टि से पूर्व की ही भाँति एक बन हुए थे और उस संस्कृति की वाटिका मध्यदण की ही भाषा थी। व्रजभाषा अपने रूप में व्रज से बाहर आ व्याप्त थी। राजस्थान की मोरा गुजरात के नरसी महता महाराष्ट्र के नामन्व तथा बंगाल की व्रजबूली में रचना करने वाले सभी व्रजभाषा से परिचित और उसमें काव्य का निर्माण करने वाले हुए हैं। प्राचीनता का माह आज भी प्रबल है पर वह उन शिष्टों की नहीं था। जायसी के पद्यावन का आज की वगानिकता भी ही अथ भाषा में लिखित प्रमाणित कर पर वह देश की सामान्य राष्ट्र के निकट ही है। विद्वत्पण पद्धति रामचरित मानस का अवधो का काव्य कहती है पर उसका जितना समान्तर अवध में है उसमें कहीं अधिक व्रज में है और यदि हम पञ्चाश राजस्थान आदि की बात करें तो वहाँ भी वह उनका ही माया में प्रचलित सिद्धाई ग्या। राष्ट्रभाषा अथवा मातृकृतिक भाषा एक विगप आधार का गकर प्रचलित होता है और आम बहनी के परन्तु अथ प्रयोग में प्रचलित गान्धावता की भी अपने साथ लिए रहनी है। अपने रूप में वह सर्वमान्य होता है। व्रजभाषा का यही सर्वमान्य रूप था। उसका गान्धी के शिष्टों से निकल कर एक में संगठित हो गया था। माँस का गान्धी या बालिया के नाम से सभी जानते थे साना भाजन व्यजन बाहार प्रसाद आदि गान्धी सब परिचित थे। उनका उच्चारण में जल्बायु के प्रभाव का अर्थ यही स्वीकार करना पड़ेगा। पर वह लिखित साहित्यिक रूप में समझने की ओर ही अधिक जायगा अभिय की ओर कम।

मुरमावर की शब्द था दण भाषा की इसी ज्ञानि से प्रणीत है।

व्रजभाषा सूरसागर की रचना द्वारा विगड़ साहित्यिक रूप को प्राप्त हुई ऐसा मूर साहित्य के अनेक पारसी विद्वानों का मत है। सूरदास के पूर्व वह साधुआ द्वारा राष्ट्रभाषा के रूप का तो प्राप्त कर चुकी थी पर साहित्यिक रूप उसे सूरदास द्वारा ही उपलब्ध हुआ। व्रज की चलती बाला संस्कृत के तत्सम शब्दों में समन्वित कर के मूर ने व्रजभाषा का जो रूप खड़ा किया वह अपनी मृगमत्ता, कामलता, माधुर्य एवं भावप्रवणता के कारण अवध बिहार, बंगाल, पंजाब आदि देशों के कवियों का कल्याणहार बन गई। इस देश में लगभग चार सौ वर्षों तक राष्ट्रभाषा के इस रूप ने कवियों की जिह्वा पर गसन किया उसमें पद्य तथा गद्य दोनों प्रभूत मात्रा में लिखे गये हैं। पट्टि सम्प्रदाय का वार्ता साहित्य भी व्रजभाषा में ही उन दिनों के कुछ प्रबंधों की विविध एक भाष्य भी व्रजभाषा गद्य में ही लिखे गये हैं।

(आ) व्रज के प्रचलित शब्द

सूरसागर में व्रजभाषा के प्रचलित शब्दों का आधिक्य है। इन शब्दों में जो जाचलिक शब्दों के अतिरिक्त हैं उस व्रजभाषा की सुगमता में अनुभव कर सकते हैं। नीचे हम सूरसागर में प्रयुक्त ऐसे शब्दों को उद्धृत कर रहे हैं जो व्रज प्रयोग और उसके आसपास प्रचलित हैं।

दूर—दुरपा के बान का आभूषण ठरि क सलोरी—लडकपन बर—जल जाव छाक—बच्छ मटठा आदि के साथ अल्प भाजन भीड़ा—छाटा लडका भीराचक डारी—बच्चा के लिए खिलौने सरिकिनी—लडकी करिया—छाटी लडकिया का कमर के नाच वस्त्र झारी—छाटा अचगरी नटखटपन बाज—गोले—भाग हुए नाऊ—नाम जाय—पूजा उछइहीं—गहरा बंधामव गिहरी गिर पर घडा रखन की भूज की बनी गाल वस्तु खेड—ग्राम के पाम पत्र—माग खाही—किसी वस्तु या मरई का बना हुआ गिर डबन का साधन खानिया जिस वर्षा में कृपण या मजदूर लगा रहत है खपूर—खपरना अकारण छटना अवसर—रसखा—मिट्टी का पात्र एमी—अस वष, बनियाँ—गाँ के बच्चों के बच्चों पर बिठाना तनक—छाटा खाड़ा पढ परया—पीछ पडना भीनेरे—अनेक वासरि—घर डोरी—बच्चा आरगाना—भाजन करना, करीबनि—सराचना अमात—समाजाना इत्यादि।

(इ) संस्कृत शब्द

किसी बाला को साहित्यिक भाषा का परिमार्जित रूप देने के लिए

आवश्यक होता है कि उसमें प्राचीन ग्रेक भाषा तथा परम्परा ग्रहात ग्रीक का प्रयोग हो। भारतवर्ष में संस्कृत भाषा का प्रयोग भी भाषा था। आधुनिक भारतवासी भाषाभाषी न अपना कलेवर की आत्ममूर्ति इसी भाषा के भाषा का अपना कर रही है। मूल भाषा में संस्कृत भाषा के तत्सम एवं तद्भव शब्दों की रूपा में प्रयुक्त हुए हैं।

(१) तत्सम शब्द

गिरिधर गजधर माधव मुरलीधर पीताम्बरधर गणेशधर
गणेशधर मुकुटधर अक्षर सुधाधर कम्बुधर ठधर कीर्तन मणिधर गावधन
परागमय मुकुलित अम्ब कदम्ब मुनि, मधुष अणु गिव अम्बुज, अमिराम
अजिर अपरिमित आयुध कलभ दारा, दम्पति निरालम्ब नपति विनाक
पद्म रसना राधा वसुधा सरसिज हाटक आदि।

(२) तद्भव शब्द

अवजम कलम, जनम परतीनि, भरमत मारम मरजाह स्वान
उल्लग अचरा सित घरती खन चवाई, जीम तरुनाई दूव पावरी भीन
मजनी भीत भावरा छोका बाहनी आदि।

किसी भाषा में व्यापकता लाने के लिए आवश्यक होता है कि उसमें
अपने समागिनी भाषाभाषी के भाषा का भी प्रयोग किया जावे मूलभाषा में
फारसी अवधी पंजाबी गुजराती आदि कई भाषाभाषी के भाषा का प्रयोग
होता है। मुसलमानी शासन अपने साथ विदेशी भाषा का लाया जिनमें फारसी
फारसी एवं तुर्की भाषा की भरमार थी। यथा खसम जवाब सजा, यकसी,
मवास लवास मसबकत जहाज, सरताज, दामनगीर, मुहकाम बाज नफा
म्याल नाहक, खच लायक बजार, गरीब, खाज दूख खबर जहर फौज।

अवधी के छन्दों में खड्डख, होइम मोर तार कीन केरों आदि का
प्रयोग है। गुजराती भाषा के बिब एव सच भाषा का प्रयोग सूरसागर में
मिलता है और ए भाषा अपनी परम्परा में सुदूर बर्तक काल तक जाते हैं।
यह में सचत्व तथा सतश्च असतश्च बिब प्रयोगों में ये भाषा विद्यमान हैं।
बिब शब्द का एक रूप अपने वे कालीन अर्थ में ही फिख भाषा में भी अर्थों
में जीवित है। यह है Bevue जिसका अर्थ है Two sight दो दृष्टियाँ

वद गुजराती व्रज तीनों में ही विव शब्द का अर्थ दो होता है।

पंजाबी भाषा की प्यारी शब्द मूल्यवान् जय में सूरसागर में प्रयुक्त हुआ है। बुन्दलखण्डी के गहिवी साहवी आदि शब्द भी यत्र तत्र आ गये हैं। पुराने पद हुए प्रान्त के साथर जैसे गद भी प्रयुक्त हो गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि व्रजभाषा जैसी यापक भाषा की सूर ने उस यावहारिक बनान के साथ साहित्यिक रूप भी दे दिया।

छन्दों में भाषा सीमाबद्ध हो जाती है। तब मिलान के लिए छन्द की गति को स्थिर रखने के लिए तथा गति आदि दापा का दूर करने के लिए प्राचीन आचार्यों ने अपिभाषण भेषम कुयान कहकर शब्दों के तात्पर्य-मराड की छूट दे रखी है। सूर ने इस मुक्त्यान्व से लाभ उठाया है। उ होने पगु को पग नवनीत का लवनी वस्तु को वस्तु गो का गइया वष का वारीस राजसूय को राजसू समन का गल देवकी का दव आदि कर दिया है।

सूर के हृदय में भावधारा बह बग से प्रवाहित होती थी। उनका प्रभाव असदिग्ध रूप से भाषा पर ही पड़ा है। सूर का भाषा प्रभावमयी है। यह प्रवाह स्वतः भाव के उमड़ने के साथ प्रकट हो गया है। इसका लिए सर का सोचना नहीं पड़ा। भाषा की इन भावा के पास पाछ दौडना पड़ा है। नीचे लिखे पद भाषा का बग और उस बग के साथ साथ चित्र अपन आप खन्ना हो जाता है।

भररात भररात दावानलन आया।

घरि बहुत और करि सार अरार मन घरनि आकाश बहुत पाम छाया।
मन बाँस बहरात कस कौस जरि उबत है मास अति प्रबल धाया॥
झपटि झपटत रुपट कुलकुल चट चटकि फरत लट गटकि द्रम दम नकाया।
वरन मनपात बहरात सहरात अररात तरु मटठा घरना गिराया॥

यह भी भाषा की द्रुतिगति देखत ही बनती है। भाव चित्र भा बिना किसी अवरोध के मानस चित्रपट पर प्रज्वलता के साथ अंकित हो जाता है।

(ई) ध्वयात्मक शब्द, लोकतिया तथा मुहावरे

जिस भाषा का सजाव बनान के लिए उसमें ध्वयात्मक शब्दों का मुहावरों और लावातियों का प्रयोग आवश्यक समझा गया है। सूरसागर

म ये विपत्तयै पयाप्त मात्रा म विद्यमान हैं । इनक प्रयाग से विचार एवं भाव मग्राण हो गय हैं । नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं —

अपना पेट दियो त उनको । दाईं भाग पेट दरावति ।
कीरे लागी होयगो कितहूँ । की गरु कहौ कि मौन छाडौ ॥
बहन रुगी अब बलि बलि बात, हम तन मन द हाथ बिकानी
मो आने की छोहरा जीत्यो चाहै माहि ।
छठि आठ माहि कृ वर सा, बहुत मूढ चणयो ।
धुर ही त खाटा खायो है । मन की मन ही माहिरही ।
लाहि छेप गुन जान जोग की ब्रज म आय उतारी ।
तुम चाहति हो गगन तरया, मागे कस पावहु ।
मयुरा हू तें गय सखीरी अब हरि कारे कासन ।
जीवन मुँह चाही का नीको । एक डार के तीर ।
खेलन अब मेरी जाति बलया, कहा ठगीसो ठाढी डाल बजाय ठगा
कत पट पर गोठा मारत ही निरे भूड क सेत ।
जसे उडि जहाज का पछी फिर जहाज पर आव ।
ताका केस खस नहि सिर ते जो जग बर पर ।

नीचे की पक्तियाँ मे ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से कितनी सजीवता, कितनी प्रीति और कितनी चित्रात्मकता आ गई है —

आजु ही चटक भई तू नयारी ।
अटपटाय बल बल करि बालत ।
गगन मेघ, गहरात, पहरातयात चपला अमचमानि ।
चक्र नभ भहरात, तरयत नभ डरपत अब लाग ।
पहरत तरतरात गरति हहरात, सरहरा पररात माय नाय ।
लकत मुकुट मटक मोहनि की चटकत चलत मन् मुसकात ।

इन पक्तियों के शब्द अपने आप खोल रहे हैं । वे सजीव हैं । रूप-रचित्र तथा भावचित्र अ कित हाता है । यह पाठकों के मन की बरसस अपनी ओर खींचने की शक्ति रखता है ।

(३) वृत्ति और गुण

साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने शब्दों में वृत्तियाँ और गुणा का भी आधार स्वीकार किया है । वृत्तियाँ तीन हैं— १ परदा २ कोमला ३ जीव

उपनागरिका । इही के आधार पर ओज, माधय और प्रसाद गुणों की स्थिति कायम निश्चित होती है । सूरसागर में सबत्र मरल सरस तथा प्रसाद गुण पूर्ण पंजावली का ही प्रयोग हुआ है । जहाँ दण्डकूट आय है वहाँ पाण्डित्य का साथ क्लिष्टता का भी समावेश हो गया है । अतः उनका रचना अत्यन्त प्रसन्न गली में ही अभिव्यक्ति हुई है । जो अलंकार भी आय है वहाँ वे अथ स्पष्टीकरण में व्यवधान नहीं बनते अपितु सीधे उपस्थित करते हैं ।

नीचे धृति तथा गणों के उदाहरण दिये जाते हैं—

(क) परपावनि और आजगण—

गल्प गापक या रत पूरन दुष्टन दम्भ भस्मन दुष्ट चूरन ।
क्षल चूड चाणूर सारन गक क मालि रक्ता करन ॥

(ख) कोमलावनि और माधय गुण—

नवल निक न नवल नवला मिलि नवल निकतन हविर बनाय ।
बिलसत विपिन बिलास विविधवर वारिज वदन विकच सचपाय ।

(ग) उपनागरिकावति और प्रसादगुण—

रघुपति प्रबल पिनाक विभजन जगरिन अतक सुतामनरजन ।

गाकरूपति मिरवर गुनसागर गापा रमन गस रनि नागर ।

ॐ शब्दशक्तिया

साहित्य मनीषियों ने शब्दशक्तियों का विभाजन गद्यांश अर्थों का ध्यान में रख कर किया है । काव्य में जिन शब्दों का प्रचलित अर्थग्रहण करने से काम चल जाता है उनमें अभिधाशक्ति मानी जाती है और उनमें जो अर्थ निकलता है उस वाक्यार्थ कहा जाता है । जब शब्द प्रचलित अर्थ का छान्द कर किसी निवृत्तवर्ती अर्थ को प्रकट करता है तब उसमें लक्षणाशक्ति मानी जाती है और उस में प्रकट हुए अर्थ का वाक्यार्थ का सन्नाह जानी है । और जब न तो शब्द न वाक्यार्थ से काम चलता है और न लक्षणा से तब शब्द व्यञ्जनाशक्ति के सहारे किसी वाक्यार्थ का प्रकट करता है । कवियों की रचनाओं में शब्दों की तीनों शक्तियों का व्यवहार होता है । विवेचन की दृष्टि से सभी आचार्य इस विषय में एक मत नहीं हैं । किसी किसी ने अभिधा और लक्षणा दो शब्द शक्तियों का ही प्रधानता दी है

और यजना का समावेश लक्षणा में ही कर लिया है। इन के मतानुसार जब ग २ के वाच्याय से हट कर किसी अर्थ अथ को ग्रहण करना हा है तो वह अर्थ चाहे निकटवर्ती हा चाहे दूरवर्ती है तो वाच्याय से भिन्न ही। अतः उसे एक लक्षणा के दाय में ही अंतर्गुक्त क्या न माना जाय। अर्थ आचार्य इसे भी स्वीकार नहीं करते। उनके मत में अर्थ निकलता तो ग २ से ही है अतः उसे कई वर्गों में विभक्त करने की क्या आवश्यकता है। आचार्य महिम भट्ट अभिधावाणी कहे जाते हैं। उनको दृष्टि में शब्द के सभी अर्थ वाच्याय हैं फिर भी सुविधा की दृष्टि से विवेचन की गहराई में न जानकर अर्थ का तीन वर्गों में विभाजन प्रायः अब सर्वसम्मत माना जाता है। मूल की रचनाओं से इन अर्थों के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) अनिद्याशक्ति

देखि सखी सुंदर घनदयाम ।

सुंदर मुकुट कुटिल कच सुंदर सुंदर भाल तिलक छवि धाम ॥

इन पक्तियों में ग २ का प्रचलित अर्थ ग्रहण करने से ही काम चल जाता है। अतः ग २ में अभिधा शक्ति है और वाच्याय की प्रधानता है।

(ख) लक्षणाशक्ति

मुख पर चंद्र डारों वारि ।

कुटिल कच पर भौर वारों मोह पर घनु वारि ॥

इन पक्तियों में मुख पर चंद्रमा की, बालों पर भ्रमर का और मोह पर घनप की घोषावर करने का क्या अर्थ है यदि ग २ का अर्थ प्रचलित अर्थ लिया जाय तो यह स्पष्ट नहीं होता। जिन वस्तुओं की घोषावर किया जा रहा है वे सौम्य की विनयना अथवा किसी विनयता में मग्न हैं जसे भ्रमर की न्यामना और घनुप की वनता। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि मुख सुंदर है चंद्र की सामा उस से कम है। बाल न्यामल हैं। भ्रमर की न्यामना में भी कुछ उच्चस्तर पर ही हैं। मोह वन हैं घनुप की वनता की अपेक्षा अधिक सुंदर हैं।

(ग) व्यजनाशक्ति और व्यंग्यार्थ

रर में मागन चार गटे

अब कमेहु बिसन नाहि ऊषी निरछे ॥ जा अटे ॥

जो वस्तु गड़ जाती है उस का निकालना कठिन है गापियाँ तक द्वारा कहती हैं जा वस्तु अंदर जाकर तिरछी हो जाय उसका निकलना तो और भी कठिन है। यहाँ गड़न का प्रचलित अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि कृष्ण कोई काँटा नहीं है और गापियाँ व हृदय भी पार्थिव या मांसल नहीं हैं कृष्ण का सो-दय निराकार और गापियाँ की हृदयगत भावना भी निराकार है। गड़ने का अर्थ है गापियाँ के हृदय पर कृष्णसो-दय के अतिक्षायित प्रभाव का पड़ना। यहाँ तक तो लक्षणा हुई। परंतु सूर के लिखने का इतना ही तात्पर्य नहीं है। सूर तिरछे हाने की बात कह कर यहाँ कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा की आर भी संकेत कर रहे हैं अतः इसमें वाच्यमम्भवा यजना है।

अलङ्करी की छवि अलङ्कृत गावत

भ्रमर अलङ्करी की छवि का गंगागान कर रहे हैं। इस उक्ति में अलङ्करी की स्यामलता तथा सुन्दरता छिपी हुई है और आर्षी यजना द्वारा प्रकट होती है।

देखियत कालिन्दी अतिवारी।

कहिया पयिक जाय उन हरि सा भई विरह जर जारी ॥

×

×

×

यमुना में रंग स्वभाव से ही नीला है। उस कृष्ण के विरह के कारण काला कहा गया है। विरह में उत्ताप होती है। ताप में जल कर काला हो जाना स्वाभाविक है। यहाँ एक सहज रंग के कारण उदभावना द्वारा वह रंग प्रदान किया गया है। यह कथन वाकछल तथा हेतु अलङ्कार में परिगणित होगा। परंतु अर्थ यही तक सीमित नहीं हो जाता सामान्य अर्थ निव घना द्वारा उससे गापियाँ के गौरवण का स्यामल हो जाना भी योग्य है और श्रीराम की रत्ना में जैसे यमुना की घारा कृष्ण हो जाती है उसी प्रकार उसमें गोपियाँ की कृपा भी ध्वनित हो रही है।

१ शब्दों के साथ क्रीडा

सूर ने आचार्य बट्टभ से दीक्षित हाकर जिस हरि लीला का गायन किया है उसमें अलग एक सहज विनोदवृत्ति विद्यमान है। प्रभु आत्मक क्रीडा है। वे अपने में ही और अपने से ही खेल रहे हैं। मुद्राद्वय में मठ में जगत हरि का सत्ता है और जाव चिदस है। कनक कृष्ण का याव व अनुसार जा कुछ है